नीलांचल से वनांचल पहुंचे थे महाप्रभु

सरिता कुमारी*

सल्तनत काल में बंगाल की सामाजिक स्थिति में काफी बदलाव आया था। हिन्दू जाति व्यवस्था की वजह से लोग आपस में विभक्त हो चुके थे। शासक वर्ग मुसलमान था जिस वजह से हिन्दुओं की स्वतंत्रता खत्म हो चुकी थी। समाज में महिलाओं के सम्मान में गिरावट आई थी। उन दिनों मुस्लिम समाज संभ्रात जीवन जीते थे। इसी बीच चैतन्य ने बंगाल में वैष्णव भक्ति आंदोलन की शुरुआत कराई। उनका व्यक्तित्व काफी सरल और सहज था। जिस वजह से उनके उपदेश को बड़ी सहजता के साथ लोगों ने स्वीकार किया। भक्ति आंदोलन की शुरुआत चैतन्य ने बड़ी गरिमा पूर्वक की थी। इसका असर ये हुआ कि उनसे प्रभावित लोग कर्मकांड की जटिलता से मुक्त हुए। अंधविश्वास और रूढ़िवादी का जनमानस पर काफी कम प्रभाव पड़ा। चैतन्य का जीवन एक उत्कृष्ट सामाजिक अभियान था, जो पुरी तरह स्वतः स्फूर्त था।[1] चैतन्य का रास्ता आत्मीयता का रास्ता था। इस अभियान का राजनीतिक या सामाजिक स्वार्थ नहीं था। इसमें न ही उग्र धार्मिक चेष्टा थी और न ही संप्रदाय विशेष के लोगों को आकर्षित करने का प्रलोभन था। उनका नाम संकीर्तन ही योगशास्त्र था। चैतन्य के इस अभियान में कई शास्त्रज्ञ, संत और साधक भी शामिल थे जो आंदोलन को धार देने में सहयोग कर रहे थे।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी विरचित बांग्ला ग्रंथ श्री चैतन्य चरितामृत में लिखते हैं कि चैतन्य के पूर्वज सिलहट्टड्ड के रहनेवाले थे। बंगाल के समीप असाम प्रांत भारतद्वाज वंशीय ब्राह्मड्ढण उन दिनों तेजस्विता के लिए काफी ख्यातिप्राप्त थे। उपेंद्र मिश्र जैसे विद्वान के यहां चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र का जन्म हुआ था। उनकी शादी नवद्वीप के प्रसिद्ध आचार्य नीलाम्बर चक्रवर्ती की बेटी शची देवी के साथ हुई थी। चैतन्य का जन्म चार फरवरी 1486 को माना जाता है। चार माह बाद उनका नाम विश्वम्भर रखा गया लेकिन घरेलू नाम उनका निमाई था। इस नाम को लेकर अनेक घटनाएं विभिन्न किताबों और लोक कथाओं में मिलता है।[2] उनका गोरा रंग होने की वजह से लोग उन्हें गौरांग कहा जाता है। निमाई के बड़े भाई विश्वरूप का महज नौ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत हुआ था। उन्होंने वैराग्य और गृहत्याग किया था। भाई के गृहत्याग के कारण पहले से ही घर के लोग दुःखी चल रहे थे। धीरे–धीरे चैतन्य शिक्षा अध्ययन की शुरुआत की। उन दिनों गंगानगर में एक पाठशाला हुआ करता था। जहां गंगादास नामक एक शिक्षक हुआ करते थे। इनके बारे कहा जाता है कि वे व्याकरण के बहुत बड़े विद्वान थे। निमाई महज ग्यारह वर्ष का था कि उनके पिता का देहांत हो गया। अपनी विधवा मां को ध्यान में रखते हुए निमाई ने संजय नामक व्यक्ति के यहां पाठशाला खोली थी। जहां दूर–दराज से विद्यार्थी पहुंच रहे थे। इसके साथ ही निमाई की प्रसिद्धी बढ़ती चली गई। इसी बीच शचि देवी ने पंडित बल्लभाचार्य की बेटी लक्ष्मी से अपने बेटे निमाई का लगन तय किया, दोनों की रीति रिवाज से शादी कराई। निमाई अध्यापक के रूप में गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे कि अचानक एक दिन वो पूर्व बंगाल के यात्रा पर निकल पड़े। इस क्रम में अपने दिवंगत पिता को पिंड़दान के लिए बिहार के गया जा रहे थे। इस दौरे के क्रम में वे अपने गुरु ईश्वर पुरी जी से मिले थे। जिनसे उन्होंने गोपाल कृष्ण मंत्र के साथ दीक्षा प्राप्त की थी। उनकी यह मुलाकात ज्ञान और चैतन्य के दृष्टकोण से महत्वपूर्ण साबित हुआ। उन्होंने ईश्वर भक्ति का प्रचार करते हुए नाम की महत्ता को लोगों को समझाया। जब वे पूर्व बंगाल का दौरा कर रहे थे तब उनकी पत्नी लक्ष्मी का देहांत स्पर्शदंश की वजह से हो गया था। इसकी जानकारी उन्हें घर लौटने के बाद हुई। बाद उन्होंने अपनी माता को धीरज बंधाते हुए कहा कि जो भाग्य में है मां उससे ज्यादा किसी को न मिला और न मिलेगा।[3] उनदिनों नवद्वीप व्याकरण का केंद्र हुआ करता था। यहां के व्याकरण आचार्य की ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। यहां कई प्रकांड पंडित हुआ करते थे जो अपने आप में विशिष्ठ और विषय के जानकार थे।[4] इसे सुन कश्मीर के प्रकांड विद्वान केशवशास्त्री दिग्विजय नवद्वीप शास्त्रार्थ को पहुंचे थे। उन्हें इस बात का घमंड था कि उन्हें शास्त्रार्थ में कोई भी नहीं हरा सकता है। इसकी जानकारी भी चारों और फैल गई कि कश्मीर के पंडित यहां विद्वानों से प्रतियोगिता करना चाहते थे। इस दौरान यहां के लोगों को यह डर भी सताने लगा कि कहीं अगर वे भूल से जीत गए तो नवद्वीप की प्रतिष्ठा धूमिल होगी। हालांकि, निमाई ने अपने दोस्तों को समझाया था कि घमंड से चूर केशवशास्त्री की हार अवश्य होगी। निमाई चाह रहे थे कि बूढ़े विद्वान का अपमान न हो इसलिए उन्होंने सांयकाल जब उपासना का वक्त होता है, उनके यहां जा पहुंचे तथा शास्त्रार्थ किया। जिसमें केशवशास्त्री पराजित हो गए और उन्होंने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए भगवान की सिद्धि हेतु अज्ञातवास में चले गए। इस प्रतियोगिता से मिली जीत के बाद वहां के विद्वानों ने निमाई को वादिसिंह की उपाधि दी थी। इधर, घर की बहू लक्ष्मी की मौत के बाद शची देवी उदास रहा रही थी। उन्होंने अपने बेटे निमाई के लिए एक सुंदर कन्या की तलाश थी। इसी बीच पता चला कि सनातन मिश्र की बेटी विष्णु प्रिया काफी सुशील और संभ्रात परिवार की है जो निमाई की बहू बनने के लिए सारे गुण रखती है। इसी बीच निमाई और विष्णु प्रिया की शादी तय हो गई। उन दिनों जमींदार बुद्धिमंत खां के सहयोग से दोनों की शादी भव्य वैवाहिक समारोह आयोजित किया गया था।

श्रीचैतन्य की मुख्य घटनाओं में सर्वप्रथम 1508 में गया की यात्रा आता है। जहां से लौटकर उनका सर्वप्रथम धार्मिक भावान्तर हुआ। जहां आचार्य पुरी ने उन्हें गोपीजन वल्लभाय नमः का मंत्र दिया। इसी बीच कई ऐसी घटनाओं का भी प्रमाण मिलता है कि निमाई कुछ परिवार के लोगों के साथ अजीब हरकत करने लगे थे। वह घर के लोगों को यहां तक कहने लगे थे कि मैं विष्णु हूं मेरी पूजा करो। धीरे–धीरे उनका मन संसारिक जीवन से उचटने लगा। इसके बाद वो पूरी तरह कृष्णमय हो चुके थे तथा मन में वृंदावन जाने की प्रबल इच्छा जाग उठी लेकिन किसी कारणवश वो नदिया पहुंच गए। जहां दोस्त और स्वजन उन्हें पाकर खुशी का ठिकाना नहीं रहा लेकिन वे पूरी तरह वैष्णव बन चुके थे। उनकी दिशा बदल चुकी थी। वे जब पुनः पाठशाला में पढ़ाने के लिए बच्चों के बीच पहुंचे तो उनका मन उचट चुका था। वो बच्चों को श्रीकृष्ण के बारे ही पढ़ाते थे। व्याकरण में भी श्रीकृष्ण की ही उपमा देते थे। इसके बाद कुछ छात्र इसकी शिकायत लेकर गंगादास के पास पहुंचे। जहां गंगादास ने निमाई को समझाया बुझाया लेकिन उन्होंने गंगादास को उतर दिया कि उनका मन और मस्तिष्क उनके वश में नहीं है। कई बार विद्यार्थियों ने उनसे हस्तक्षेप किया तो निमाई ने कहा कि तुम दूसरे आचार्य से शिक्षा ग्रहण को स्वतंत्र हो। निमाई ने नाम संकीर्तन का प्रारंभ किया। जिसमें हरे हरेय नामः कृष्णयादवाय नमः।

गोपाल गोविंद रामश्री मधुसूदन।।

इसी बीच निमाई का अध्यापन कार्य छूट गया और वे पूरी तरह से संकीर्तन में रम गए। उनके संकीर्तन की गूंज चारों और होने लगी। कुछ विरोधियों ने संकीर्तन को बंद कराने के लिए इसका दुष्प्रचार शुरू किया। चारों और रात्रि पहर हरिबोल नाम संकीर्तन सुनाई पडने़ लगा। इस दौरान कुछ लोग नवद्वीप के काजी के यहां पहुंचकर संकीर्तन को बंद कराने का आग्रह किया ताकि लोगों की नींद में खलल नहीं पड़े। जिसके बाद काजी ने लोगों को उचित आश्वासन दिया। इन्ही दिनों निमाई के जीवन में निताय(नित्यानंद) का प्रवेश हुआ। निताय नवद्वीप पहुंचे थे अद्वैताचार्य तथा हरिदास के प्रधान भक्त बन गए थे। इसी बीच निमाई के यहां सत्संग होने लगा। नवदीप में चारों और हरिप्रेम का प्रचार होने लगा। आचार्य का खास निर्देश था कि हरिनाम संकीर्तन में किसी से भी भेदभाव नहीं होना चाहिए। ब्राह्मण से लेकर छोटे जाति के लोगों को इस संकीर्तन कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए। धीरे–धीरे हरिनाम चारों तरफ गूंजने लगा। इसी बीच काजी ने डरा धमका कर संकीर्तन को तो बंद करा दिया। इससे नाराज निमाई ने वृहद संकीर्तन समारोह का आयोजन किया। जिसमें भारी संख्या में लोगों ने हिस्सा लिया। इस हरिनाम संकीर्तन में कोई जाति पाति बंधन का भेद नहीं था। इस कार्यक्रम में महिला पुरूष सभी ताल स्वर के साथ नाम संकीर्तन में हिस्सा लिया

था। लोगों की भीड़ के पीछे नित्यानंद और गदाधर के साथ निमाई नृत्य कर रहे थे। इस विशाल भीड़ को देख काजी डर गया तथा लज्जा के मारे सब के सामने पहुंचकर कभी भी नाम संकीर्तन का विरोध न करने का संकल्प लिया। इधर, निमाई संन्यास को सोचने लगे लेकिन माता शची उसे कई बार समझाने लगी लेकिन वह संन्यास को पूरी तरह संकल्पित हो चुके थे। अपनी मां से उन्होंने कहा कि मां अब मेरा मन मेरे वश में नहीं है। इसी बीच तेजी से यह बात फैल गई कि निमाई सन्यास ले चुके हैं। जिसे सुन अपने मायके से विष्णु प्रिया अपने पति के घर लौट आई तथा अपने पति को संन्यास लेने से मना करने लगी। उनके घर के सामने हजारों लोगों का जमावड़ा हो गया। 1510 ई. में उन्होंने माघ मास शुक्लपक्ष जब नगर के समस्त नर नारी गहरी नींद में सोये हुए थे। निमाई की मां शची और विष्णुप्रिया नींद की आगोश में थी। इसी बीच मौका पाकर निमाई घर से निकल गए। दोनों जब नींद से जागी निमाई को घर पर नहीं पाकर अचेत हो गई। जैसे ही नगर के लोगों को पता चला कि निमाई घर छोड़ चुके हैं तो चारों और हाहाकार मच गया। आस पड़ोस के लोगों ने दोनों का सांत्वना दिया। गृह त्याग के बाद निमाई आचार्य केशव के यहां पहुंचे। आचार्य को निमाई के घर की स्थिति की जानकारी थी। शुरू में तो आचार्य ने सन्यास को लेकर सहमत नहीं हुए लेकिन निमाई के जिद्द के आगे वे हार मान गए तथा दूसरे दिन उन्होंने रीति रिवाज के साथ उन्हें संन्यास दीक्षा दिलाई। संन्यास के बाद वे राढ़ देश के फलिया नामक गांव में ठहरे हुए थे। जहां अबतक नाम संकीर्तन नहीं हुआ था। जहां उन्होंने नाम संकीर्तन किया तथा इस संकीर्तन में हर जाति बिरादरी के लोग शामिल हुए। इसके कुछ दिन बाद शांतिपुर के आश्रम में मां शची देवी और पत्नी विष्णु प्रिया की भेंट हुई।[5] यहां दस दिन रूकने के बाद वे पूरी के लिए रवाना हो गए।

एक संयासी के रूप में चैतन्य का जीवन हर रूप में अद्वितीय था। चैतन्य की दूसरी घटना में दक्षिण की यात्रा है। इस यात्रा में उन्होंने जगन्नाथपुरी होते हुए दक्षिण के कई जगह तीर्थ किए थे। उन्होंने लगभग संपूर्ण भारत की यात्रा की। उनके उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक में शिष्य बने। दक्षिण भ्रमण के दौरान उन्होंने नौरोजी डाकू का उद्धार किया था। चैतन्य के जो उपदेश हैं उनमें उन्होंने कहा कि दूसरे की निंदा पर कभी नहीं करनी चाहिए, अगर कोई कर भी रहा है तो इस पर ध्यान नहीं देना चाहिए। उन्होंने वैष्णव के मुख्य मार्ग को बताते हुए कहा कि ग्राम्य कथा (निंदा) कभी नहीं सुननी चाहिए। इसके सुनने से मन नहीं लगता है। ग्राम्य कथा नहीं करना चहिए इससे भजन में ध्यान नहीं लगता है। अच्छे स्वादिष्ट भोजन नहीं खाना चाहिए, इससे विषय को लोलुपता बढ़ती है। अच्छे और चमकीले कपड़े नहीं पहना चाहिए क्योंकि इससे जीवन में बनावट आती है। जीवन में अभिमान रहित बनाया जाना चाहिए। हृदय में अभिमान आते ही सारे साधना

नष्ट हो जाते हैं। दूसरे को सदा मान देते रहना चाहिए ताकि आपका आत्मसम्मान बढ़ सके।

हरिनाम संकीर्तन के जरिये विश्व को अलौकिक प्रेम का बोध कराने वाले चैतन्य महाप्रभु जगरन्नाथ धाम से वृंदावन यात्रा के लिए निकले थे। 1513 में उन्होंने वाराणसी तथा प्रयाग राज का भ्रमण किया था। 1515 में कार्तिक पूर्णिमा के दिन उनका वृंदावन में आगमन हुआ था। झारखंडिय का प्रमाण भी चैतन्य काल में ही मिलता है। उन दिनों झारखंडिय वन का कई जगह जिक्र मिलता है। जिसमें उड़ीसा, वर्तमान झारखंड और वर्तमान छत्तीसगढ़ सहित मध्यप्रदेश का हिस्सा हुआ करता था। उन दिनों आदिवासियों का कई समूह यहां बास करता था। इनके अलावा कई अन्य जातियां भी रहते आ रही थी। उन दिनों झारखंड में आदिवासी और सदान की मिली जुली संस्कृति हुआ करती थी। झारखंडी एक अलग भौगोलिक क्षेत्र में रहते थे। अखिलानंद चौधरी के झारखंड राज्य में पर्यटन स्थलों के भौगोलिक अध्ययन में उल्लेख करते हैं। झारखंड की चर्चा चैतन्य महाप्रभु ने एक श्लोक में कुछ इस प्रकार की है। जिसमें उन्होंने कहा कि

अयः पात्रे पयः पानम्, शाल पात्र च भोजम्।
शयनम् खर्जूरी पत्रे, झारखंड विधियेत।।

इसका अर्थ है झारखंडवासी धातु के बर्तन में पानी पीते हैं। शाल के पत्ते पर भोजन करते हैं और खजूर की चटाई पर सोते हैं। इससे तत्कालीन झारखंड के सामाजिक परिवेश एवं संस्कृति पहचान का बोध होता है। यहां वक्त के साथ कई सामाजिक और धार्मिक आंदोलन की शुरुआत हुई। शिवपुराण के 38वें अध्याय अंतर्गत नदी उपपुराण में शिवजी कहते हैं कि मैं चिताभूमि वैद्यनाथ में लिंग के रूप में विराजमान हूं।

स्वामी प्रेमानंद द्वारा रचित पुस्तक के मुताबिक चैतन्य महाप्रभु अपने शिष्य बलभद्र भट्टाचार्य के साथ झारिखंड (छोटानागपुर, मध्यप्रदेश के सबलपुर, संतालपरगना और छत्तीसगढ़ का सरगुजा का दौरा करते हुए वृंदावन को चले थे। वे सदा कृष्ण के प्रेम में रमे रहते थे। इस दौरान उनके संकीर्तन को सुनकर हिंसक वन प्राणी उनके लिए मार्ग छोड़ देते थे। इस रास्ते बसने वाले भील, संथाली और अन्य आदिवासी समुदाय के लोग गांव–गांव में महाप्रभु का दर्शन कर उनके कीर्तन को सुनकर वैष्णव बन गए थे।[6] दक्षिण भारत का भ्रमण कर चैतन्य महाप्रभु पुनः पुरी लौट चुके थे लेकिन उनके मन में वृंदावन यात्रा की इच्छा पुनजीर्वित हुई। इससे पहले वे माता गंगा और मां साची सहित अन्य भक्तों के दर्शन को बंगाल जाने का फैसला लिया। उन्होंने पहले निर्णय लिया था कि बंगाल से वे वृंदावन के लिए रास्ता तय करेंगे लेकिन जब नवद्वीप के लोगों को इसकी जानकारी हुई की महाप्रभु वृंदावन जाएंगे तो भारी संख्या में लोग अपनी तरह से तैयारी में जुट गए।

इन्ही में एक भक्त थे नृसिंह ब्रह्मचारी जिन्होंने महाप्रभु के लिए रास्ता बनाने का मन बनाया ताकि वे चैतन्य की यात्रा को वो आसान बना सके। उन्होंने मन ही मन ध्यान में सड़क बनाने पर लगाया लेकिन साहिबगंज का नाट्यशाला या कन्हैयास्थान के आगे सड़क निर्माण नहीं कर पाए। इसके बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि महाप्रभु अब वृंदावन नहीं जा पाएंगे। अपनी मां से मिलने जब वो बंगाल के लिए चले तो पुरी के रास्ते बारानगर में भगवत आचार्य के घर में एक सप्ताह के लिए रूके थे। जिसे आज पाथबारी के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में इसे वैष्णव संग्रहालय बनाया गया है। जहां उनका खादम(लकड़ी की चप्पल)है। साथ ही नित्यानंद प्रभु और सनातन गोस्वामी की ताड़ के पत्ते की पांडुलिपियॉ भी मौजूद है। महाप्रभु संन्यास लेकर पूरी तरह वैरागी बन गये थे।

भारतीय परंपरा के मुताबिक ईश्वर की किसी न किसी रूप में उपासना होती रही है। उसका एक कारण यह भी था क्योंकि चैतन्य के साथ हजारों लोग साथ चलना चाहते थे। जिसके बाद महाप्रभु वृंदावन न जाकर पूरी लौट गए थे।[7] पुरी कुछ दिनों इंतजार के बाद महाप्रभु फिर से अपने श्रद्धालुओं से वृंदावन जाने की इच्छा व्यक्त करने लगे। साथ ही अपने अनुयायियों से वे अनुरोध किया कि वे उन्हें अपने पास रखने के लिए किसी भी चाल का उपयोग न करें। उन दिनों पुरी के राजा प्रतापरुद्र और अन्य भक्तों ने महाप्रभु को बारिश के मौसम और आगामी रथयात्रा उत्सव का कारण बताते हुए जाने से मना कर दिया था। इसलिए बरसात और रथयात्रा के बाद चैतन्य एक सेवक बलभद्र भट्टाचार्य के साथ अपनी वृंदावन की यात्रा शुरू की। चैतन्य का यह यात्रा दिव्य घटनाओं से भरी हुई है। उड़ीसा छोड़कर वह हिंसक जंगली जानवर के निवास वाले झारिखंड के जंगल से गुजर रहे थे। उनके इस यात्रा से जंगली जानवर भी आकर्षित थे।[8] उन दिनो यह इलाका घनघोर जंगल हुआ करता था। जिस वक्त चैतन्य महाप्रभु इस इलाके से दौरा कर रहे थे। तब उनके साथ उनका सेवक बलभद्र भट्टाचार्य और एक सहायक के अलावा उनका जलपोत और महज कुछ कपड़े साथ थे। कहा जाता है कि उन दिनों यह इलाका घनघोर जंगल हुआ करता था। श्री चैतन्य चरितामृत ग्रंथ (बांग्ला भाषा) में उल्लेख है कि मान्दार पृथ्वी जाइबो, झाडखंड देशे, झाडखंडी रा आछे अद्भूत रूपे।। मथुरा जाबार काले आसि झाडखण्डो मिलिल, प्राय : लोक ताहा परम आनंद।

नामे प्रेम दिया कोरिले सोबार उद्धार, चैतन्येर गुढ़ लीला बुझा भार।।

अर्थात श्री चैतन्य महाप्रभु को मथुरा जाते समय उन्हें झारखंड मिला। उस वक्त यहां के लोग परम आनंद में थे। प्रेम से चैतन्य का नाम लेने से सभी उद्धार हो जाते हैं। इसलिए उनका रहस्य समझना कठिन है। उन दिनों झारखंड में हिन्दू और आदिवासियों की बीच धर्म की भिन्नता नहीं थी। चैतन्य जब पूरी से वृंदावन

को प्रस्थान किया तो ढेर सारे भक्त उनके साथ मौजूद थे। रास्ते में ग्रामवासी ही उन सब को खाने की व्यवस्था किया करते थे।

सभ्यता से कोसों दूर इस इलाके में अधिकतर आदिवासी समुदाय के लोग वास करते थे। इनके जिविकार्पजन का सबसे बड़ा साधन जंगल और यहां की जमीन हुआ करती थी। जंगल में बसे गांवों की संख्या बहुत ही कम थी। भाषाई तौर पर लोग कम विकसित थे। चारों और कंटीली झाडियां हुआ करती थी। रास्ता भी अति दुर्गम हुआ करता था। इन सब के बावजूद झारखंड के लोग साधु–संयासी के प्रति अपार श्रद्धा रखते थे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि हाल के दिनों इसे लेकर इस्कान की टीम एक शोध कर रही थी। टीम के सदस्यों ने लिखा कि झारखंड दौरा के दौरान हमें काफी सम्मान मिला है। टीम के हिस्सा रहे कृष्ण सुदामा दास लिखते हैं कि हमने बिहार के तुलना में झारखंड के इलाके में अधिक सम्मान पाया।[9] माना जाता है कि जब चैतन्य महाप्रभु वृंदावन के लिए झारखंड के रास्ते चल रहे थे उस वक्त कोई चिन्हित रास्ता नहीं था। जंगल के बीच सिर्फ पगडड़ी थी। जिसके सहारे चैतन्य आगे पैदल चल रहे थे। इस दौरान चैतन्य महाप्रभु का चरण रामगढ़ के कुजू स्थित चौथा नदी के तट पर पड़ा था। जिस कारण यह इलाका चरणधाम के नाम से आगे चलकर जाना जाने लगा। कृष्ण नाम से भावविभोर महाप्रभु ने चौथा नदी के जल स्नान भी किया था।[10] जंगल यात्रा के दौरान उन्होंने जो वातावरण बनाया था और वनवासियों की चेतना में उन्होंने महसूस कराया कि वे पहले ही वृंदावन पहुंच चुके हैं। इसके बाद उन्होंने इस झारिखंड में ही एक वृंदावन के बारे श्लोक का पाठ किया। वृंदावन भगवा का दिव्य निवास है। वहां कोई भूख, क्रोध और प्यास नहीं है। हालांकि, स्वाभाविक रूप से शत्रुतापूर्ण, मनुष्य और भयंकर जानवर दिव्य मित्रता में एक साथ रहते हैं।[11] यहां चैतन्य जानवरों का व्यवहार देखकर मुस्कराए और अपने रास्ते चलते गए। जब चैतन्य जंगल से गुजर रहे थे गायों ने उनकी और आकर्षित होकर उन्हें घेर लिया और उन्हें चाट लिया। जब उन्होंने सहलाया तो वे उसकी संगति को छोडने में असमर्थ थे। इसी बीच भगवान जब जंगल से गुजर रहे थे तो बाघ, हाथियों, जंगली सुअर, हिरण, गैंडा और सांपों का झूंड वहां आ पहुंचा। महाप्रभु इनके बीच से गुजर रहे थे। बलभद्र भट्टाचार्य इन सब जंगली जानवरों को देखकर डर गया लेकिन चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से सभी जानवर एक तरफ खड़े हो गए। एक दिन रास्ते में एक बाघ लौटा हुआ था और चैतन्य महाप्रभु उसी पथ पर चल रहे थे। चैतन्य ने जैसे ही बाघ को अपने पैर से छू उसे कृष्ण का पवित्र नाम जाप करने को कहा इसके बाद बाघ उठकर नाचने लगा। कहा जाता है कि एक दिन महाप्रभु स्वर्णरेखा नदी में स्नान कर रहे थे कि पागल हाथियों का एक झूंड वहां पानी पीने आ पहुंचा। जब महाप्रभु नहा रहे थे तो वो गायत्री मंत्र का उच्चारण कर रहे थे

कि भागवान ने हाथियों पर पानी छींटे और कृष्ण नाम का जप करने लगे। जिसे सुन हाथियों का पूरा झूंड मस्ती से नाच उठा।[12] चैतन्य चरितामृत में इस बात का उल्लेख है कि पांच सात बाघों का एक समूह भगवान के पीछे चलने वाले हिरणों के समूह में शामिल हो गया। बाघ और हिरण न केवल नृत्य करने लगे बल्कि जानवर परमानंद में कूदने लगे। महाप्रभु ने उनके प्रेम को देख उन्हें गले लगा लिया और मूंह छूकर चूमने लगा। सभी वन प्राणी, पशु, पक्षी, पेड़ और लताएं चैतन्य के स्पंदित मात्र से पागल हो गए। भगवाने ने न केवल लोगों के दिलों में भगवान के प्रति उत्साही प्रेम को जगाया बल्कि इससे पशु पक्षियों को भी जोड़ा। वे भगवान के शुद्ध प्रेम में इस कदर डूबे कि उन्होंने झारखंड के जंगल को ही वृंदावन और नदियों को यमुना नदी मान लिया।[13] हालांकि, चैतन्य चरितामृत में सटीक स्थान का उल्लेख तो नहीं है लेकिन इस बात का संकेत है कि महाप्रभु ने कटक शहर के अपने दाहिनी ओर रखा जब उन्होंने जंगल में प्रवेश किया।[14] भगवान चैतन्य के आत्मकथा में इस बात का उल्लेख है कि उन्होंने चौटामा नदी के तट पर कुंजा नगरी में संकीर्तन किया था। कहा जाता है कि इस नाम संकीर्तन में जंगली जानवरों ने भी हिस्सा लिया था। यही नहीं उनके मधुर कीर्तन से पृथ्वी इतनी हर्षित हुई थी कि कहीं कहीं पिघल गई। परिणास्वरूप महाप्रभु और आसपास के जानवरों के पैर के निशान बन गए। यह इलाका झारखंड का चरण पहाड़ी के नाम से आज जाना जाता है। यही पर प्रभु ने स्वणरेखा नदी में स्नान भी किया था।[15] जहां महाप्रभु के साथ सभी जंगली जानवर नाम मात्र से मुग्ध होकर नृत्य करने लगे थे। इसमें हिरण, गैंडा, हाथी, बाघ, सांप आदी का पदचिह्न आज भी मौजूद हैं। 16वीं शताब्दी में चैतन्य महाप्रभु के रांची चुटिया के राधाबल्लभ मंदिर (श्रीराम मंदिर आने तथा ठहरने का प्रमाण मिलता है।[16] जब चैतन्य आगे बढ़े तो रामगढ़ जिला स्थित कुजू के वन इलाके प्राकृतिक छटा और वन तथा कल कल कर बहती चौथा नदी को देख तट पर रूके थे। जिस वजह से इस स्थान का नाम चरणधाम पड़ा।[17] आज भी प्रभु का चरण चिन्ह पत्थर में अंकित है। कहा जाता है जब चैतन्य महाप्रभु बिहार के गया अपने पितरों को पिंडदान कर अपने घर नवद्वीप वापस लौट रहे थे। तब साहिबगंज के कन्हैयास्थान (कन्हैया नाट्यशाला) में तमाल पेड़ के नीचे विश्राम के दौरान महाप्रभु को कृष्ण के बाल रूप का दर्शन हुआ था। यह स्थल गंगा नदी के किनारे है। यहां राधे कृष्ण के पदचिह्न आज भी हैं। वर्तमान में इस मंदिर का देखरेख इस्कान संस्थान कर रहा है।[18] चैतन्यचारितामृत से ज्ञात होता है कि चैतन्य महाप्रभु नीलांचल से मथुरा जाते हुए झारखंड से होकर गुजरे थे। फलस्वरूप अनेक आदिवासी उनसे प्रभावित होकर वैष्णव धर्मावलंबी हो गए थे। यही नहीं राम और कृष्ण के चरित्र पर मुंडारी, सदानी और पंचपरगनिया भाषाओं में अनेक काव्य कृतियां इसके बाद उपलब्ध हुई। चैतन्य ही वह संत हैं जिन्होंने

मुंडा और उरांव को धार्मिक विश्वास दिलाने में सफल हुए।[19] वे जब 1515 में वृंदावन पहुंचे तो महाप्रभु ने विधवाओं की दयनीय दशा और सामाजिक तिरस्कार को देखते हुए शेष जीवन प्रभु भक्ति की ओर मोड़ा इसके बाद से विधवाओं को वृंदावन आने की परंपरा शुरू हुई। वृंदावन में करीब पांच सौ वर्षो से विधवा महिलाएं आश्रय स्थल रहा है।[20] इसी तरह कोराम्बे, रजरप्पा, वैद्यनाथ धाम अलग–अलग समय पर गौरांग महाप्रभु आए। विशेष कर पुरी से वृंदावन जाते उन्होंने कई स्थानों पर रूके तथा अपने संकीर्तन से कृष्ण नाम का प्रचार किया। इस क्रम में भारी संख्या में लोग वैष्णव धर्म को अंगीकार किया था। आज लगभग हर गांव में एक गोलाकार हरिमंदिर मिलता है। यहां प्रतिवर्ष बैशाख और जेष्ठ माह में बांग्ला अखंड पाला हरिनाम संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। इस आयोजन में सद्भाव की झलक दिखती है। जिस गांव में पाला कीर्तन का आयोजन किया जाता है। वहां सभी जाति वर्ग के लोग बढ़चढ़कर इसमें हिस्सा लेते हैं। यही नहीं हरिनाम संकीर्तन करने वाले लोगों को दानस्वरूप अनाज, नकदी, सब्जियां देते हैं। माना जाता है कि जब गौरांग महाप्रभु पुरी से वृंदावन के लिए चले थे तो झारखंड के इस जंगल में बसे ग्रामीणों के पास उन्हें देने के लिए अनाज, नकदी, सब्जियां ही थी। पूरे रास्ते उनके जाने, खाने और ठहरने का प्रबंध ग्रामीणों ने किया था। प्रतिवर्ष आयोजन होने वाले तीन चार दिवसीय हरिनाम संकीर्तन आयोजन के दौरान ग्रामीण पूरे गांव में मांस, मदिरा, लहसुन, प्याज से दूरी बनाते हैं। यही नहीं गांव के लोग अपने दरवाजे और मुख्य द्वार को आम और नीम के पत्ते से सजाते हैं। उन दिनों गौरांग महाप्रभु के आने पर जिस तरह का वनवासियों ने स्वागत किया था। कुछ इसी रूप में आज भी गांव को आम और नीम के पत्ते और फूलों से सजाया जाता है। इसके पीछे एक तर्क यह भी है कि भारतीय संस्कृति में आम के पेड़ को लाभकारी और गुणकारी माना गाया है। हिन्दू आम की पेड़ को समिधा के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसे घर के दरवाजे में लटकाने से सुख और समृद्धि आती है। इसी तरह नीम औषधीय गुणों से भरपूर होता है। विषाणु जनित समस्याओं में इसका प्रयोग अद्भुत होता है। गांव के लोग जब पाला कीर्तन सुनने के लिए गांव के चौपाल या मंदिर में इकट्ठा होते हैं। ऐसे में गांव में किसी तरह संक्रमण का प्रसार न हो या गांव के लोगों को संक्रमित होने से बचाया जाए इसके लिए ग्रामीण इसका उपयोग करते हैं। चैतन्य के इस आंदोलन (1486–1533) को भारत में भारी समर्थन मिला। महाप्रभु ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने दुनिया को झारखंडिय (झारखंड) के बारे बताया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व, शिक्षा और मिशनरी के माध्यम से वनवासियों के बीच गौड़ीय वैष्णववाद (अर्थात ब्रह्म–माधव गौड़ीय संप्रदाय) फैलाने का काम किया। सभ्यता से कोसों दूर वन जंगल में बसे लोगों को उन्होंने धर्म, ज्ञान, पूजा–पाठ और रहन सहन तक की

सीख दी। झारखंड के लोगों में धार्मिक और सामाजिक चेतना का स्पंदन कराने में चैतन्य का अहम भूमिका रही है। उन्होंने भक्ति योग का विस्तार किया हरि बोल, हरि कृष्ण महामंत्र को लोगों के बीच काफी लोकप्रिय बनाया। यही नहीं उन्होंने शिक्षाशक्तिम् (आठ भक्ति प्रार्थना) की रचना की। पुरी से वृंदावन दौरे के क्रम में उन्होंने सामाजिक रूप से बहिष्कृत लोगों को अपने आंदोलन से जोड़ा।

1533 ई. में पश्चिम भारत के भ्रमण के बाद तीस वर्षीय चैतन्य पुरी वापस आए थे और यहां 18 वर्ष तक पुरी में जीवन के अंतिम दिन तक रहते रहे। श्री चैतन्य के देहत्याग 48 वर्ष की उम्र में 15जून 1934 ओडिशा के पूरी में हुआ था।

साभार

1. भारत का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. एके मित्तल
2. श्री चैतन्य चरितावली, प्रभुदत्त ब्रह्मङ्चारी
3. श्री चैतन्य चरितावली, प्रभुदत्त ब्रह्मङ्चारी
4. मध्ययुगीन भारतीय सभ्यता संस्कृति, उमाशंकर मेहता
5. श्रीमदभागवत गीता
6. अमर उजाला
7. Krishna.com
8. The telegraph online
9. इस्कान का आफिसियल वेबसाइट
10. दैनिक भास्कर
11. श्रीमद्–भागवतम (10.13.60)
12. चैतन्य चरितामृत, अध्याय 16, पृष्ठ 26 से 32
13. The official Iskcon Padayatra website
14. चैतन्य चरितामृत, श्लोक–24
15. The official Iskcon Padayatra website
16. आसुतोष कुमार मिश्रा, भागवत धर्म एक दार्शनिक अध्ययन महाप्रभु चैतन्य के विशेष संदर्भ में
17. 400 वर्ष पुराना है चुटिया का राम मंदिर, यहां 16 वीं शताब्दी को आए थे चैतन्य महाप्रभु हिन्दी जागरण डाट कम 05 अगस्त 2020
18. 533 वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु आए थे कुजू हिन्दी जागरण भास्कर डाट कम 2018
19. कन्हैया स्थान, जहां आज भी मौजूद है श्रीकृष्ण के पैरों का निशान हिन्दी प्रभात खबर डाट कम 11 अगस्त 2020
20. दिवाकर मिंज, मुंडा एवं उरांव का धार्मिक इतिहास
21. चैतन्य महाप्रभु ने वृंदावन को मोड़ी थीं विधवाएं हिन्दी जागरण डाट कम 15 मई 2015

****